हिन्दी कथा साहित्य का समाजशास्त्र

Dr. Asha Tiwari Ojha*

Associate Professor, Department of Hindi, Sunderwati Mahila College, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar

सार - हिन्दी कथा साहित्य में बाल-केन्द्रित कहानियों एवं उपन्यासों में बच्चों की अनेक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं की चर्चा करते हुए हिन्दी कथाकारों ने गहन संवेदना तथा गहरी समझ का परिचय दिया है। कहीं यह चर्चा प्रत्यक्ष है, कहीं परोक्ष, तो कहीं गौण, किन्तु समाज-शास्त्रियों की दृष्टि से छूट गई अनेक ऐसी गंभीर समस्याओं को प्रमुखता से स्थान दिया गया है जो बच्चों पर सीधे आक्रमण करती हैं तथा जिनके सूत्र उनके अभिभावकों के व्यवहार, उनकी परवरिश के तौर-तरीकों, उनको प्राप्त होने वाले परिवेश तथा वातावरण में मिलेंगे। फिर भी बच्चों की कुछ समस्याओं की व्याख्या समाजशास्त्र बेहतर ढंग से करता है और कुछ समस्याओं के सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दु तक केवल साहित्यकारों की ही दृष्टि पहुँच सकी है। दोनों दृष्टिकोणों की तुलना करने पर प्राप्त तथ्य इस प्रकार हैं-

हिन्दी कथा साहित्य में भी पूरी गम्भीरता के साथ इस समस्या को उठाया गया है। परिवार, पड़ोसी, रिश्तेदार या अन्य विश्वासपात्रों के द्वारा किए गए इस अपराध की व्याख्या के साथ इसके कारण बच्चों पर पड़ने वाले तात्कालिक तथा दूरगामी दुष्प्रभावों की भी चर्चा की गई है जैसे - कमल कुमार की कहानी 'नहीं बाबूजी नहीं' तथा नासिरा शर्मा की कहानी 'बिलाव' में नशे में धुत पिता ही अपनी पुत्री के साथ दुराचार करता है। सगे पिता के साथ जब पुत्री सुरक्षित नहीं तो सौतेले पिता का कहना ही क्या? सौतेले पिता की कुदृष्टि की शिकार शबनमा ('शबनमा' - देवेन्द्र सत्यार्थी) उसकी यौन-कुचेष्टाओं से घबराकर घर से भाग जाती है किन्तु कहीं भी सुरक्षित ठौर ठिकाना न मिलने के कारण अन्ततः एक वेश्या बन जाती है।

वहीं 'छिन्नमस्ता' नामक उपन्यास में प्रिया नामक बालिका अबोधावस्था से लगातार अपने सगे बड़े भाई के द्वारा दुराचार की शिकार होती है और चुपचाप सहते रहने की विवशता उसके शोषण के नैरन्तर्य को और भी बढ़ाती है। 'अशक्त और मासूम बच्चे अपने चारों ओर बड़ों की दुनिया में निडर होकर अपनी पीड़ा की बात कह सकें, ऐसा माहौल उन्हें कहीं नहीं मिलता। अपने माँ-बहन, भाई, पिता, चाचा, ताऊ, टीचर, पड़ोसी या सम्बन्धी की आँखों में आँखें डालकर बता सकें कि पिछली रात, पिछले दिन, पिछले महीने या पिछले साल या हर रात, हर दिन उनके साथ कौन क्या कर रहा है। 'बच्चे झूठ बोलते हैं' बड़ों की दुनिया का ये ब्रहमास्त्र या वेदवाक्य बच्चों के मनों पर घात लगाए बैठा रहता है .....बात-बात पर झिड़की खाने वाले बच्चे नंगे होकर कैसे दिखाएँ कि उनके जिस्म कितने ज़ख्मी हैं'।[1] प्रिया को भी हर वक्त डाँटने, झिड़कने वाली माँ से यह सब कुछ बताने में यही भय है कि उसकी बात का विश्वास नहीं किया जाएगा। 'खेल' (नवनीत मिश्र) तथा 'मैंने कह दिया न बस' ।रानी दर) में यह दुष्कृत्य विश्वासपात्र पड़ोसी करता है। वहीं 'कन्या' (उमेश माथुर) में कथा वाचक पण्डित, 'बिलाव' (नासिरा शर्मा) और 'काली लड़की का करतब' (मंजुल भगत) में मुँह बोले मामा और चाचा तथा 'सूरजमुखी अँधेरे के' (उपन्यास-कृष्णा सोबती) में यह दुष्कृत्य एक अज्ञात व्यक्ति करता है।

---------------------------------x---------------------------------

बालश्रम एक अत्यन्त गहन एवं विश्वव्यापी समस्या है जिसे समाजशास्त्रियों ने बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक उठाया है। वर्तमान समय में कृषि, विनिर्माण, उद्योग तथा अन्य क्षेत्रों में लगे बाल श्रमिकों की संख्या 10 करोड़ से भी अधिक है जिनमें बहुत बड़ी संख्या में बच्चे ऐसे हानिकारक एवं अति खराब दशा वाले कार्यो में लिप्त है जिनसे उन्हें तुरन्त हटाया जाना चाहिए। समाजशास्त्र बालश्रम के कारण, परिणाम, स्थिति तथा इस समस्या की गम्भीरता पर व्यापक चर्चा करता है, साथ ही कार्यस्थल पर होने वाले उनके शारीरिक, मानसिक, भावात्मक तथा यौन-शोषण व उनको दी जाने वाली अमानवीय यातनाओं उनके पशु से बदतर और नरकतुल्य जीवन की दुर्दशा पर भी प्रकाश डालता है। हिन्दी कथा साहित्य में इस समस्या को अलग परिपे्रक्ष्य से देखने का प्रयास किया गया है। समाजशास्त्रियों की भाँति सहित्यकारों ने भी बालश्रम की समस्या का प्रमुख कारण निर्धनता को ही माना है। कोई बच्चा अपने परिवार को भुखमरी से बचाने हेतु चोटिल होकर भी भारी बोझ उठाना चाहता है जैसे

कि कहानी 'पुलपार' (कमल कृष्ण गोस्वामी) में तो कोई बच्चा सौतेले पिता के पास पल रहे अपने भाई बहनों को बचाने के लिए होटलों में जी तोड़ परिश्रम करने को बाध्य है जैसे कि 'परायी प्यास का सफर' (आलमशाह खान)। वहीं कुछ कहानियों - 'भय' (राजेन्द्र यादव), 'रामलीला' (प्रेमचन्द) आदि में कार्यस्थल पर होने वाले उनके शोषण की करूण कथा कही गई है। 'दुकानदार बच्चे' (हृदयेश) में शिक्षा-दीक्षा, खेल-खिलौने सब छोड़कर अत्यल्पायु में ही दुनियादारी तथा दुकानदारी में झोंक दिए गए बच्चे हैं, तो पेट पालने की जुगत करते-करते अपने प्राण तक गवाँ देने वाले बच्चे, नागरिक अधिकार (विनोदशंकर व्यास) 'वे बच्चे' (मोहनलाल महतो) तथा अमरो (ऋता शुक्ल) आदि कहानियों में मौजूद हैं। हिन्दी कथा साहित्य में विशेष रूप से घरेलू काम करने वाले बाल-श्रमिकों की दुर्दशा को दर्शाया गया है। अथक परिश्रम करने पर भी मालिकों की हृदयहीनता, क्रूरता तथा बहुविध शोषण के शिकार बच्चों की कहानियाँ अत्यन्त करूणाजनक हैं। 'उसका स्कूल' (नवीन जोशी), 'अललटप्पू' (सुषमा मुनीन्द्र), 'ईनाम' (अमर गोस्वामी), 'दो आने की मिठाई' (उपेन्द्र नाथ अश्क), 'मुखौटे' (आशा जोशी), 'बहादुर' (अमरकांत) तथा 'फरिश्ते' (उर्मिला शिरीष) आदि कहानियों के घर-मालिक पढ़े-लिखे, सभ्य और समाज में इज्ज़तदार गिने जाने वाले वे व्यक्ति हैं जिनके इस वाहय मुखौटे के पीछे का चेहरा जल्लाद का है, जिनके हृदय में इन मासूमों के लिए न तो रहम है न ही दर्द, बल्कि वे उसे मानव ही नहीं समझते। 'कुत्ते की पूँछ' (यशपाल), 'बचपन' (उषा महाजन), 'झरोखे' (भीष्म साहनी), 'नौकर' (विवेकीराय), आदि में इसी तथ्य को दर्शाया गया है। इस समस्या के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण तथा साहित्यकारों के दृष्टिकोण का एक अन्तर यह भी दिखाई पड़ता है कि जहाँ समाजशास्त्रियों ने बालश्रम की समस्या का एक समाधान वयस्कों को अधिकाधिक रोज़गार उपलब्ध कराने में सोचा है वहाँ वे इस तथ्य की अनदेखी करते नज़र आते हैं कि घर के बड़े प्राणियों के चले जाने पर घर में पीछे जो बच्चे रह जाते हैं, अभी पराश्रित हैं, उनकी देखभाल और घर के सारे कामकाज का कार्यभार कौन संभालेगा? किन्तु साहित्यकार इस विषय में मौन न रहते हुए इस तथ्य का खुलासा करते हैं कि ऐसे कितने ही बच्चे दिनभर छोटे-बड़े विभिन्न कामों में रत, अपने से छोटे भाई-बहनों को सँभालते-सँभालते अपना बचपन पूरी तरह खो चुके हैं। जैसे 'बेबस बचपन' (ममता खरे) नामक कहानी की नसरीन, 'संवैधानिक हक' (गौरीशंकर आर्य) कहानी का नन्दू जिसे स्कूल से इसलिए निकाल दिया जाता है क्योंकि स्वयं काम पर जाते वक्त माँ बार-बार उसे छोटे भाई की देखभाल करने के लिए स्कूल से बुलवा लेती है।

बालश्रम का एक कुत्सित रूप बच्चों की खरीद-फरोख्त एवं बिक्री है। यूनिसेफ द्वारा जारी की गई रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में प्रतिवर्ष लाखों बच्चों की खरीद फरोख्त होती हैं जिनमें से एक बड़ी संख्या भारतीय बच्चों की हैं। कई बच्चे प्रतिवर्ष अकस्मात् रूप से लापता हो जाते हैं जो और कहीं नहीं, इन्हीं बिक्री मण्डियों में पहुँचा दिए जाते हैं। वे बच्चे या तो देश-विदेशों में घरेलू श्रमिकों के रूप में कार्य करते हैं अथवा देह-व्यापार के दलदल में सदा के लिए धकेल दिये जाते हैं। हिन्दी कथा साहित्य में बच्चों की खरीद-फरोख्त के इस कटु एवं अत्यन्त अप्रिय प्रसंग को क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों के आधार पर तो नहीं बल्कि बहुत ही छोटे स्तर पर उठाया गया है जहाँ गरीबी, भुखमरी और विवशता के चलते उन्हें बेचने वाले उनके अभिभावक ही हैं। जैसे - चित्रा मुद्गल की कहानी 'भूख', धर्मवीर भारती की 'एक बच्ची की कीमत', सुषमा मुनीन्द्र की कहानी 'अलल टप्पू' आदि। शैलेष मटियानी की 'चील' कहानी में पाण्डुरंग नामक व्यक्ति भिक्षावृत्ति तथा दूसरे आपराधिक कार्यों के लिए बच्चों का व्यापार करता है।

बच्चों में भेदभाव की समस्या को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक चर्चाएँ हुई हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ का बाल अधिकार घोषणा पत्र धर्म, वंश, जाति, जन्म स्थान, भाषा, लिंग, राष्ट्रीयता, सम्पत्ति या अक्षमता आदि में से किसी भी आधार पर बच्चों के साथ भेदभाव किए जाने का विरोध करता है। समाजशास्त्र में मुख्य रूप से लिंगीय भेदभाव तथा मात्रा में अक्षम बच्चों के साथ बरते जाने वाले भेदभाव की चर्चा की गई है किन्तु हिन्दी कथा साहित्य में लिंगीय भेदभाव, जाति एवं धर्मगत भेदभाव, अक्षम बच्चों के साथ भेदभाव तथा आर्थिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में बरता जाने वाला भेदभाव, इन सभी की खुलकर चर्चा की गई है।

केवल कन्या के रूप में जन्म लेने के कारण आजीवन इसकी सज़ा भोगने वाली बालिकाएँ घर, आस-पड़ोस तथा चतुर्दिक परिवेश में लिंगीय भेदभाव का सामना नित्यप्रति करती हैं और उनके साथ होने वाले इस भेदभावपूर्ण बर्ताव का स्वरूप भी बहुविध है जिनमें समाजशास्त्रियों ने मुख्यतः निम्नलिखित को गिनाया है -

(1) कन्या भ्रूण हत्या तथा कन्या शिशु हत्या (2) उपेक्षित व्यवहार (3) शोषण (4) कठोर श्रम कराना (5) बालिकाओं का लैंगिक शोषण (6) बाल विवाह तथा अनमेल विवाह आदि। इसके विभिन्न दुष्प्रभावों की भी चर्चा की गई है जैसे- (1) घटना लिंगानुपात (2) बालिका मृत्यु (3) कुपोषण (4) अशिक्षा (5) कुण्ठा एवं आत्मविश्वास की कमी आदि। हिन्दी कथा साहित्य में लिंगीय भेदभाव के इन सभी रूपों पर प्रकाश डाला गया है। 'तृष्णा' (कत्तार सिंह दुग्गल), 'उगने से पहले' (डॉ. प्रतिभा गर्ग) आदि में भ्रूण जाँच तथा कन्या-भ्रूण हत्या की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। कुछ स्त्रियाँ पुत्रवती हुए बगैर अपना

www.ignited.in

मातृत्व सार्थक नहीं मानतीं, इसी कारण यदि पुत्री से जन्म ले लिया तो उसे प्यार, दुलार, वात्सल्य, यहाँ तक कि दुग्धपान कराने से भी वंचित रखा जाता है जैसे 'तेंतर' (प्रेमचन्द), 'तुम किसकी हो बिन्नी' (मैत्रेयी पुष्पा), 'तीन किलो की छोरी' (मृदुला गर्ग) आदि में उसके जन्म को दुख, शोक और संताप का विषय मानकर सदैव उपेक्षापूर्ण व्यवहार तथा प्रताड़नाएँ ही दी जाती हैं। यह तथ्य सामाजिक सर्वेक्षणों में भी सामने आया है कि बालिका शिशुओं को बालक-शिशुओं की अपेक्षा बहुत कम समय तक दुग्धपान कराया जाता है, कम चिकित्सा सुविधाएँ तथा कम पोषाहार मिलता है। पुत्र की प्रतीक्षा में जन्मी अवांछित कन्याओं को तो क्रूरता तथा अमानवीय अत्याचारों का शिकार होना पड़ता है। बालकों की अपेक्षा उनके कमतर होने का एहसास सभी सदस्यों के पक्षपातपूर्ण व्यवहार में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। शिक्षा, भोजन, अवकाश, खेलकूद, चिकित्सा आदि की सुविधाएँ उन्हें अपेक्षाकृत बहुत कम मात्रा में मिलती हैं।

बच्चों में धर्मगत एवं जातिगत भेदभावों की समस्या के सम्बन्ध में समाजशास्त्र में प्रत्यक्ष तौर पर तो नहीं परन्तु साम्प्रदायिक विद्वेषों, दंगों, युद्धों, विभाजन आदि विभीषिकाओं की चर्चा करते समय परोक्ष रूप से इसे रेखांकित किया जाता है किन्तु हिन्दी कथा साहित्य में स्पष्ट तौर पर बच्चों के साथ बरते जाने वाले उन भेदभावपूर्ण व्यवहारों की चर्चा की गई है जो उनके साथ धर्म एवं जाति को लेकर किए जाते हैं। 'पहला पाठ' (भीष्म साहनी), 'फन्ने' (सुनीता पाराशर), 'कटी हुई किरणें' (हिमांशु जोशी), 'जुमराती मियाँ' (विनोद मिश्र), आदि में धर्म और जातिगत भिन्नता होने के कारण बच्चों को भी गाँव वालों के विरोध, तिरस्कार तथा घृणा का पात्र बनना पड़ता है। वहीं 'हायराम ये बच्चे' (विष्णु प्रभाकर), 'उसके प्रश्न' (शिशिर पाण्डेय) आदि कहानियों में इसके कारण बच्चों मे मन में होने वाले उद्वेलन को दर्शाया गया है। कुछ कहानियों में साम्प्रदायिक विद्वेष, युद्ध, विभाजन आदि की विभीषिकाओं की चर्चा की गई है। जैसे - 'रस्सी का साँप' (आलमशाह खान), 'इन्सानियत' (विष्णु प्रभाकर), 'मेरी माँ कहाँ' (कृष्णा सोबती), 'मास्टर साहब' (चन्द्रगुप्त विद्यालंकार), 'सोलह छतों का घर' (कमलेश्वर), 'लेटरबक्स' (अज्ञेय), 'युद्ध' (शानी) आदि।

प्रत्येक धर्म के भीतर कई जातियाँ एवं उपजातियाँ पाई जाती हैं जिनमें परस्पर एक दूसरे से उच्च होने का भाव, दूसरी जाति के प्रति घृणा, छुआछूत आदि की भावना विद्यमान है। जाति को आधार बनाकर भी बच्चों में भेदभाव किया जाता है। हिन्दी साहित्यकारों ने इस पर पर्याप्त चर्चा की है जैसे 'दूध का दाम' (प्रेमचन्द) में जमींदारों के परिवार में भंगिन के बेटे मंगल के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाता है तथा 'कहाँ जाए सतीश' (ओम प्रकाश बाल्मीकि) में जाति का पता लगते ही गृह मालिक द्वारा रात्रि में ही ठिठुरती ठंड में इस बच्चे को घर से बाहर निकाल दिया जाता है। 'उसका गणेश' (नीलकान्त), 'हलयोग' (मार्कण्डेय) आदि कहानियों मे निम्न जाति का होने के कारण बच्चों को उनके अध्यापक बेवजह पीटते हैं। यहाँ तक कि 'हरिजन सेवक' (मधुकर सिंह) में एक शिक्षक हरिजन बच्चों के प्रति वाह्य तौर पर सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए घर बुलाकर उनका यौन शोषण करते हैं।

मानसिक या शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों की त्रासदी भी दोहरी है। एक ओर वे अपनी अक्षमताओं से जूझते हैं तो दूसरी ओर समाज की ओर से उन्हें प्रताड़नाएँ, तिरस्कार व भेदभावपूर्ण व्यवहार मिलता है। यद्यपि समाज वैज्ञानिकों ने बच्चों की अक्षमता के प्रकार, उनकी समस्याओं आदि पर तो प्रकाश डाला है किन्तु उनके साथ होने वाले अमानवीय व्यवहारों अथवा उनके प्रति पारिवारीजनों तथा अन्य सामाजिक प्राणियों के रवैये की चर्चा नहीं की है किन्तु हिन्दी कथा साहित्य में इस सन्दर्भ में कई कदम आगे बढ़कर यह स्पष्टतः दर्शाया गया है कि कैसे विकलांग बच्चे अपने ही परिवार में नगण्य, अस्वीकृत, उपेक्षित, तिरस्कृत और प्रताड़ित होकर रह जाते हैं। जैसे - 'प्रायश्चित' (शकुन्तला भटनागर) में माँ स्वयं ही विकलांग बच्चे को अपना बच्चा मानने से इनकार कर देती है। उसकी निरन्तर उपेक्षा, फटकार और अस्वीकृति से वह बच्चा मरणासन्न हो जाता है। 'अन्धा सूरज' (ज्ञान प्रकाश विवेक) में दारोगा पिता को अपना नेत्रहीन पुत्र अपनी पद, प्रतिष्ठा पर एक बदनुमा दाग लगता है इसलिए न ही उन्होंने कभी उसे प्रेम दिया न ही बेटा होने का दर्जा, बल्कि क्रूरतम ढंग से पीटा और कमरे में बन्द रखा जाता है। 'खुदा की देन' (चन्द्रकिरण सौनरेक्सा) में माता-पिता ने अपनी अपाहिज लड़की की खाट सड़क पर डाल दी है और हवा, पानी, गर्मी सहती वहीं पर वह मर जाती है। 'डेंजरपाथ' (जीवितराम सेतपाल) में पिता अपने इकलौते विकलांग बच्चे की सेवा सुश्रूषा करते-करते उकताकर उसे ऊँची खाई से धक्का देकर मार डालने का निश्चय कर डालता है तो 'बाल भगवान' (स्वदेश दीपक), 'मूर्ख बालक' (स्वरूपकुमारी बख्शी) 'काली सुबह का सूरज' (उपन्यास-रामधारी सिंह दिवाकर) आदि में मानसमन्द विकलांग बच्चों के लिए उनके अपने सम्बन्धी ही दुश्मन बन जाते हैं।

समाजशास्त्री 'निर्धनता' की व्याख्या दो प्रकार से करते हैं एक ओर वे मूलभूत आवश्यकताओं तथा सुविधाओं की न्यूनतम मात्रा से वंचित रहने के रूप में इसे एक निरपेक्ष 'आर्थिक समस्या' के रूप में देखते हैं, वहीं समाज के दूसरे समूहों से

तुलना करते हुए, उच्च स्तरीय सुख-सुविधाएँ भोगने वाले वर्गों के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए इसे 'असमानता' मानते हैं।

मात्र आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर किए गए भेदभावपूर्ण व्यवहार के फलस्वरूप बच्चों में हीन-आत्मसंप्रत्यय का विकास होने, उनमें सामाजिक उपेक्षा तथा सामाजिक अरूचि की भावना उत्पन्न होने तथा निरन्तर प्रताड़नाएँ झेलते रहने से उनके कुंठित होने तथा कई बार समाज विरोधी गतिविधियों में लिप्त हो जाने की समस्या के रूप में इस समस्या को समाजशास्त्रियों ने परखा है। समाजशास्त्री हेथरिंगटन ने स्कूलों में कमजोर या निम्न आर्थिक पृष्ठभूमि से आए बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियों में गिरावट के लिए इसी असमान या भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण उनमें उत्पन्न नकारात्मक-आत्मसंप्रत्यय को उत्तरदायी माना है।[2] किन्तु हिन्दी कथा साहित्य में इस समस्या पर भिन्न प्रकार से प्रकाश डाला गया है। जैसे निर्धन वर्ग के बच्चों के साथ उनके अपने ही सम्बन्धियों तथा सामाजिकों द्वारा दुर्व्यवहार - 'कीमत' (कृष्णा अग्निहोत्री), 'बच्चे' (द्विजेन्द्रनाथ निर्गुण) आदि कहानियाँ। वहीं 'लड़की' (नवीन सागर), 'खट्टे अनार: मीठे अनार' (कृष्ण चन्दर), 'मिट्टी के खिलौने' (सोमा वीरा) आदि कहानियों में भेदभाव व उपेक्षापूर्ण बर्ताव के शिकार बच्चे स्वयं ही अपने को हीन तथा कमतर जानकर बाकी समाज से खुद को काट लेते हैं। 'सुनो पालनहार' (मालती महावर), 'सर्वेन्ट क्वाटरिए' (गिरिराज किशोर), 'अफसर का बेटा'(चन्द्रकिरण सौनरेक्सा) आदि कहानियों में माता-पिता ने अपने बच्चों को धन के सुनहरे फ्रेम में कैद कर उन्हें बाल सुलभ सहजता से दूर कर दिया है। बटरोही की कहानी 'आगे बढ़ते हुए' में स्वयं निर्धन वर्ग से उठकर धनाढ्य, प्रतिष्ठित बना एक व्यक्ति जब फुटबाल मैच में निर्णायक बनाया जाता है तो स्पष्ट रूप से अपनी पद, प्रतिष्ठा व पत्नी-बच्चों की नज़रों में ऊँची शान बनाने के लिए निर्धन छात्रों के साथ भेदभाव करता है। 'दाज्यू' (शेखर जोशी) और 'जंक्शन' (गजानन माधव मुक्तिबोध) में एक अलग दृष्टिकोण से इस समस्या को रेखांकित किया गया है। 'दाज्यू' कहानी में होटल में बैरे के रूप में काम करने वाले बच्चे का जगदीश नामक व्यक्ति के शुष्क व्यवहार, उपेक्षा और तिरस्कार के कारण 'व्यक्ति' से 'वर्ग' में परिणत होना अति मर्मस्पर्शी ढंग से दिखाया गया है। इसी प्रकार 'जंक्शन' नामक कहानी में कड़ाके की सर्दी में एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति के हृदय में रेलवे प्लेटफार्म पर बैठे दो बच्चों के प्रति दया व सहायता का भाव उत्पन्न होता है किन्तु वह निर्धन बच्चे की मदद करने के बजाय एक आकर्षक व भले घर के बच्चे की सहायता करता है जबकि उसका अन्तर्मन उस समय उसे धिक्कार रहा है कि उसने उस निर्धन बच्चे की सहायता केवल इसलिए नहीं की क्योंकि व दूसरे और निचले किस्म के निचले तबके के लोगों की पैदावार है।[3]

बाल आत्महत्या के गम्भीर एवं ज्वलन्त मुद्दे पर भी समाजशास्त्रियों और साहित्यकारों की राय में कहीं साम्य तो कहीं वैषम्य है। 'इलियट तथा मेरिल' ने आत्महत्या को वैयक्तिक विघटन के दुखद और अपरिवर्तनशील अन्त के रूप में परिभाषित किया है।[4] बच्चे भी आत्महत्या करते हैं यह अत्यधिक कड़वा सच है और स्पष्ट तौर पर इसके लिए उत्तरदायी है - वह परिवेश, वे स्थितियाँ तथा वे समस्याएँ जो हमने उनके समक्ष उपस्थित कर दीं, जिन्होंने उनके लिए आत्महत्या का कदम उठाने के सन्दर्भ में उत्प्रेरक की भूमिका निभाई। समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययनों के माध्यम से बाल-आत्महत्या के मुख रूप से निम्नलिखित कारण गिनाए हैं -

(1) अप्रिय परिस्थितियाँ - माता-पिता के बीच तनाव तलाक तथा घर का कहल-क्लेषपूर्ण बोझिल वातावरण या माता-पिता में से किसी एक की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न अप्रिय परिस्थितियाँ।

(2) पारिवारिक उपेक्षा, हीनत्व-बोध, अहं पर तीव्र आघात।

(3) सहन करने की क्षमता से अधिक शारीरिक अथवा मानसिक दबाव तथा उत्पीड़न।

(4) दोषपूर्ण शिक्षा एवं परीक्षा प्रणाली।

(5) जैविक विकास में बढ़ती तेजी के कारण शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों का अल्पायु में ही सामना करने से उत्पन्न मनोविकार।

(6) जैनरेशन गैप, बड़ों से मतान्तर, जिद आदि।

(7) बच्चों में बढ़ती हुई आवेश की भावना।

कुछ समाजशास्त्रियों ने इसके लिए व्यक्ति से ज्यादा 'समाज', 'समूह' तथा 'परिस्थितियों' को उत्तरदायी ठहराया है। जैसे - व्यक्ति और समूह के पारस्परिक सम्बन्धों के कमजोर होते जाने तीव्र, एकाकीपन, अपरिचय तथा उपेक्षा अनुभव करने पर की जाने वाली आत्महत्या (दुर्खीम), समाधान रहित समस्याओं के कारण आत्महत्या (कैवन) आदि।

मार्टिन गोल्ड ने बाल आत्महत्या की समस्या पर प्रत्यक्ष रूप से प्रकाश डालते हुए कहा कि बच्चों को दिया जाने वाला कठोर शारीरिक दण्ड, मानसिक यातनाएँ आत्महत्या का परिणाम सामने लाती हैं। वयस्क हो जाने पर भी उनके द्वारा की गई आत्महत्या उनके बचपन के कटु अनुभवों का ही परिणाम है। बाल आत्महत्या के विषय में यही कहा जा सकता है कि बच्चों में

www.ignited.in

दूसरों को मारने की प्रवृत्ति की अपेक्षा घोर निराशा, एकाकीपन, उपेक्षा, तिरस्कार, शारीरिक उत्पीड़न एवं घोर मानसिक दबाव, आवेश आदि के क्षणों में स्वयं को समाप्त कर देने के विचार जल्दी पनपने लगते हैं जिसका परिणाम है - आत्महत्या। जबकि उन्हें इस निर्णय पर ला खड़ा करने के ज़िम्मेदार वे स्वयं नहीं, दूसरे हैं।

हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित एवं व्याख्यायित बाल-आत्महत्या की भीषण समस्या के विषय पर चर्चा करें तो हम पाते हैं कि यहाँ पर भी बाल आत्महत्या के लिए उत्तरदायी तत्त्व - घोर मानसिक दबाव ('मृतकभोज' - प्रेमचन्द), परिवारिक उपेक्षा और तिरस्कार ('हम तुम्हारे हैं' - दर्शन लाड), कलह-क्लेषपूर्ण तथा अनुपयुक्त, अस्वस्थ परिवारिक वातावरण (उपन्यास - 'उसका बचपन' - कृष्णबल्देव वैद), अनुपयुक्त शिक्षा एवं परीक्षा प्रणाली ('क्यों' - भगवती चरण वर्मा और 'सगी सौतेली' - ओम प्रकाश अवस्थी) आदि हैं। यानि हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित बाल-आत्महत्या की दुर्घटनाओं में बच्चे के व्यक्तित्व से सम्बन्धित कारण - आवेश, अहं, मनोविकार, बड़ों से मतान्तर तथा ज़िद आदि को नहीं लिया गया है। बल्कि ये तो वे आतंकित प्रताड़ित, उपेक्षित तथा तिरस्कृत बच्चे हैं जिन्होंने अपने जीवन में उत्पन्न हो गई समाधान रहित समस्याओं से निस्तार पाने का कोई मार्ग न पाकर यह कदम उठाया।

बाल-अपराध की समस्या पर समाजशास्त्र में अत्यधिक विचार-विमर्श किया गया है। समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण में - भग्न परिवार, पारिवारिक तनाव व कलह-क्लेश, अभिभावकों द्वारा अस्वीकार झेलना, अनुपयुक्त अनुशासन पद्धति (अति न्यून या अत्यधिक अनुशासन) तथा परिवार में आर्थिक सुरक्षा की अपर्याप्तता आदि वे पारिवारिक कारण हैं जिन्हें बाल-अपराधों के उत्प्रेरक के रूप में देखा जा सकता है। हिन्दी कथा साहित्य में भी ये सभी पारिवारिक कारण - भग्न परिवार तथा सौतेले माता या पिता का दुर्व्यवहार ('काँछा' - हिमांशु जोशी, 'गृहदाह' - प्रेमचन्द), अति न्यून अनुशासन ('कड़वी ममता' - सुधा गौतम), अत्यधिक अनुशासन ('आतंक' - सुनील कौशिश, 'दायित्व' - अवधेश श्रीवास्तव), माता-पिता तथा बड़ों द्वारा अनुचित आदर्श ('आज़ाद परिंदे' - फणीश्वरनाथ रेणु, 'मौन संवेदना' - रघुवंश), माता-पिता द्वारा अस्वीकार ('वह माँ के पेट से पैदा नहीं हुआ था' - परिपूर्णानन्द) आदि के आधार पर बच्चों को अपराधी बनता दर्शाया गया है। साथ ही समाजशास्त्रियों से एक कदम आगे बढ़कर साहित्यकारों ने यह भी दिखाया है कि न केवल अपराधी माता-पिताओं की सन्तानों के अपराधी बनने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं बल्कि अभिभावक स्वयं बच्चों को अवैधानिक एवं असामाजिक कृत्य करने के लिए बाध्य करते हैं जैसे - विमल वेद की कहानी 'तुकाराम' राजेन्द्र चाँद की कहानी 'ऐसा भी होता है', निर्मल कुमार की कहानी 'दिलरूबा' आदि।

समाजशास्त्र में बाल-अपराध के लिए दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण निर्धनता को माना गया है। विभिन्न समाजशास्त्रियों - विक्रइन्निज, एबाट, लोवेलकार, हीले, जार्ज बोल्ड आदि ने निर्धनता और बाल अपराध का घनिष्ठ सम्बन्ध माना है। हिन्दी कथा साहित्य में भी अति निर्धनता के कारण बच्चों को अपराध जगत में प्रवेश करने हेतु विवश होते दिखलाया गया है, जैसे - 'फर्क' (अमरकांत), 'अंधेरा टूटता हुआ' (ओमप्रकाश मेहरा), 'भूखे और प्यासे' (द्विजेन्द्रनाथ निर्गुण), 'करूणा की विजय' (जयशंकर प्रसाद) आदि। अति निर्धनता, भुखमरी और घोर अभावों के शिकार इन बच्चों द्वारा हत्या जैसा जघन्य अपराध कर डालने के वीभत्स दृश्य भी हिन्दी कथा साहित्य में मौजूद हैं जैसे - 'पाँचवाँ पराठा' (गिरिराज किशोर), 'अभिशप्त' (यशपाल), 'करूणा की विजय' (जयशंकर प्रसाद) आदि।

बाल-अपराध के परिवेशजन्य कारकों के रूप में समाजशास्त्रियों ने बुरी संगति, आस-पड़ोस के दूषित वातावरण, मनोरंजन के साधनों का दुष्प्रभाव, सिनेमा, चलचित्रों आदि के द्वारा गलत संदेश प्रसारित होना बताया है किन्तु हिन्दी कथा साहित्य में इन तत्त्वों पर अधिक विचार न करते हुए एक-दो कहानियों में इन्हें उत्तरदायी ठहराया गया है जैसे - 'बेचारे अभिशप्त' (कमला गोकलानी) व 'अभियुक्त' (राकेश वत्स) में बुरी संगति बच्चों को अनुचित दिशा में भटका देती है।

समाजशास्त्र में बाल-अपराध के कुछ सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारण भी बतलाए गए हैं। जब समाज एक उचित आदर्श प्रस्तुत करने में विफल रहता है, चतुर्दिक अनैतिकता, भ्रष्टाचार एवं अनुचित आचरणों का बोलबाला हो तो बच्चों के नीतिवान तथा आदर्शपूर्ण बनने की आशा कैसे की जा सकती है क्योंकि बच्चों का प्रत्येक व्यवहार (चाहे वह उचित व आदर्शपूर्ण या अनुचित व दोषपूर्ण) उस दर्पण के समान है जिसमें उसके परिवार और परिवेश का चेहरा साफ दिखाई पड़ता है। यानि वे जो कुछ भी देखते, सुनते व अनुभव करते हैं उसी का अनुकरण करने लगते हैं। हिन्दी कथा साहित्य में भी इस विषय पर प्रकाश डालते हुए दर्शाया गया है कि चित्रा मुद्गल की कहानी 'बेईमान' में ए0सी0 ट्रेनों में पत्रिका बेचने वाला बच्चा बुद्धिजीवी तथा सभ्य समझे जाने वाले लोगों से ही बेईमानी का पाठ सीखता है, वहीं 'बेचारे अभिशप्त (कमला गोकलानी) में एक बच्चे पर चोरी के झूठे आरोप में उसे पुलिस द्वारा दी गई अमानवीय यातनाएँ उसके पूरे जीवन को बदल डालती हैं और वह अपराधी बन जाता है। ज्ञान प्रकाश विवेक की कहानी 'अन्त

एक सूरज का' में यह भेद खुल जाने पर कि मंगलू वेश्यापुत्र है उसे स्कूल से निकाल दिया जाता है। मंगलू आगे चलकर भयानक अपराधी बनता है इस प्रकार हिन्दी कथा साहित्य इस ओर ध्यानाकर्षित करता है कि कितने ही बच्चों को अपराधी बनने से बचाया जा सकता है, इस विषय पर गंभीर चिन्तन एवं ठोस कार्यों की आवश्यकता है।

जहाँ तक बच्चों से जुड़ी मनोवैज्ञानिक समस्याओं का प्रश्न है, बाल-मन को समझने की अतीव आवश्यकता अनुभव करते हुए एक पृथक शाखा के रूप में बाल-मनोविज्ञान पर कार्य किया गया है। बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों व अध्ययनों में उनके अवस्थानुरूप विकास (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, सांवेगिक), कतिपय अनुचित आचरणों जैसे- क्रोध एवं आक्रात्मकता, भय, इर्ष्या, झूठ, शर्मीलापन, विद्रोहात्मकता आदि के कारणों व उपचारों की चर्चा मिलती है तथा बच्चों की वृद्धि एवं विकास में विभिन्न संस्थाओं जैसे - परिवार, समवयस्क समूह, स्कूलों आदि के योगदान की व्याख्या पर ही अधिकतर ध्यान केन्द्रित किया गया है, किन्तु बच्चों को ऐसी बहुत सी मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिन तक सामान्यतः सबकी दृष्टि नहीं पहुँच पाती। जैसे - बच्चों में एकाकीपन की समस्या, माता-पिता के अलगाव के पश्चात् उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याएँ, बाल-परिवेश के अभाव के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याएँ, उपेक्षित, तिरस्कृत रहने के कारण उत्पन्न समस्याएँ तथा आपराधिक मनोवृत्ति पनपने की समस्याएँ आदि।

समाजवैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों एवं हिन्दी कथाकारों के एतद्विषयक दृष्टिकोण की तुलना करें तो हम पाते हैं कि जहाँ समाजवैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने बाल-जीवन की मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर छिटपुट चर्चा की है वहीं हिन्दी कथा-साहित्य में इस पर बहुत विचार-विमर्श मिलता है इसमें न केवल समस्या बल्कि उसके कारणों की पड़ताल उसके तात्कालिक तथा दूरगामी प्रभावों एवं दुष्परिणामों की चर्चा भी बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि व समझ के साथ की गई है। दोनों दृष्टिकोणों का तुलनात्मक विवेचन इस प्रकार है -

बच्चों में एकाकीपन की समस्या को लें तो समाजविज्ञानियों ने अपने अध्ययनों के आधार पर इसके मुख्यतः निम्नलिखित कारण बतलाए हैं -

(1) माता-पिता द्वारा एकाकीपन अनुभव करने से बच्चों में भी इसका हस्तान्तरण होता है यानि यह जन्मजात समस्या है।

(2) अभिभावकों के वैवाहिक जीवन की विफलता।

(3) अभिभावकों की पालन-पोषण सम्बन्धी अनुचित रीतियाँ।

(4) पारिवारिक कलह तथा तनावपूर्ण वातावरण।

किन्तु हिन्दी कथा साहित्य में बच्चों के एकाकी अनुभव करने कई कारण बतलाए गए हैं जैसे – (I) एकाकी परिवार तथा वयोवृद्ध जनों से भी सहयोग न लेना - 'फासले' (मालती जोशी), 'माय नेम इश ताता' (सूर्यबाला) (II) कामकाजी माता-पिता के पास बच्चों के लिए समय न होना - 'बोझ' (मैत्रेयी पुष्पा), 'मम्मी को छुट्टी है' (त्रिलोक मेहरा), 'महानगर की मैथिली' (सुधा अरोड़ा), 'माय नेम इश ताता' (सूर्यबाला), 'सूने आँगन का गुलाब' (हरीश निगम), 'खंडित संवाद' (से0रा0 यात्री), 'उस घर में' (पृथ्वीराज मोंगा), 'घर' (हरियश राय), 'अफसर का बेटा' (चन्द्रकिरण सौनरेक्सा), 'ऑयम सारी मम्मी' (आशा जोशी) (III) बच्चों से स्नेहपूर्ण सम्बन्धों का न होना तथा उनकी उपेक्षा- 'चारगाहों के बाद' (अनीता राकेश), 'गलत होता पंचतंत्र' (राजी सेठ), 'छुट्टी का एक दिन' (केशव)। (IV) पारिवारिक कलह एवं तनावपूर्ण वातावरण- 'अच्छा थीक है' (कमलेश्वर), 'चारगाहों के बाद' (अनीता राकेश) (V) माता-पिता में से किसी एक का वियोग 'ममता की कोई शक्ल नहीं होती' (मनजीत शर्मा 'मीरा'), 'बबलू के पापा' (गुरूबचन सिंह), 'प से पापा' (उद्भ्रांत), 'विमाता' (प्रेमचन्द) (VI) किसी स्नेही स्वजन या प्रिय वस्तु का विछोह 'काकी' (सियारामशरण गुप्त), 'खंडित संवाद' (से0रा0 यात्री) (VII) अनाथ एवं निराश्रित होने की स्थिति - 'डरपोक' (मालती महावर), 'लक्का सुन्नी' (मृणाल पाण्डे), 'मेहमान' (उषादेवी विजय कोल्हटकर) (VIII) नवीन परिवेश में सामंजस्य न बिठा पाना- 'शुरूआत' (गोविन्द मिश्र), 'जिद्दी' (शेखर जोशी) आदि।

जहाँ समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान एकाकीपन अनुभव करने की निरन्तरता के कारण बच्चों का भयग्रस्त तथा आतंकित रहना, अलग-थलग रहना, गलत प्रवृत्तियों में पड़ जाना आदि दुष्प्रभाव बतलाते हैं वहीं साहित्यकारों ने बच्चों में धीरे-धीरे आक्रोश एवं आक्रामकता बढ़ते जाने की प्रवृत्ति को दिखलाया है - 'मम्मी को छुट्टी है' (त्रिलोक मेहरा), 'उस घर में' (पृथ्वीराज मोंगा), 'महानगर की मैथिली' (सुधा अरोड़ा), 'आखिरी साँस का किराया' (रॉबिन शॉ पुष्प), 'कूँ कूँ' (रमेश गुप्त)। नितान्त एकाकीपन एवं असहायता अनुभव करने वाले ये बच्चे अपनी विवशता, खीझ और उलझन जड़ वस्तुओं, पेड़-पौधों को मारने, पीटने, उखाड़ने में और चीख चिल्लाकर, विद्रोही रवैया अपनाकर प्रकट करते हैं। वहीं 'छुट्टी का एक दिन' (केशव), 'खंडित संवाद' (से0रा0 यात्री) आदि कहानियों ने मानव जगत से निराश होकर इन बच्चों ने

www.ignited.in

पशुओं को अपना संगी-साथी, सहचर सब कुछ मान लिया है। निरन्तर एकाकी जीवन व्यतीत करते रहने से कुछ बच्चे अत्यन्त मूक अन्त्तमुखी तथा आयु से अधिक परिपक्वता प्राप्त दिखाई देने लगते हैं जैसे- 'रूबी' (मृणाल पाण्डे), 'महानगर की मैथिली' (सुधा अरोड़ा), 'कूँ कूँ (रमेश गुप्त) आदि कहानियों में दर्शाया गया है।

अभिभावकों के मध्य तनाव, तलाक आदि के कारण होने वाले अलगाव से उत्पन्न होने वाली समस्याएँ बाल जीवन की वे मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं जिनमें सर्वाधिक निर्दोष होते हुए भी सर्वाधिक दण्ड, पीड़ा और दुख बच्चे ही भोगते हैं। अलगाव की स्थिति उनके लिए वस्तुतः कितनी भयावह और त्रासदायक है इसका अनुमान कोई नहीं लगा सकता।

आंग्ल समाजशास्त्री हेरी.एम. जॉनसन ने कहा है कि - "हमारे समाज का तलाक का सबसे निकृष्ट पक्ष सम्भवतः यह है कि बच्चों को रखने का अधिकार बार-बार बँटता रहता है। ......पास रखने के अधिकार का विभाजन होने से यह कहना कठिन है कि किस प्रकार एक बालक अपने को निष्ठा के संघर्ष से बचा जा सकता है।"[5] हिन्दी कथा साहित्य में अनेक कहानियों तथा कुछ उपन्यासों में इस समस्या को दर्शाया गया है। मन्नू भण्डारी जी अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'आपका बण्टी' के वक्तव्य में कहा ही है कि 'समान रूप से दोनों से जुड़ा होने के कारण खंडित निष्ठा उसकी नियति है[6] और स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि कैसे माँ के लिए अपना बचपन, खेलकूद, पिता की यादें, बातें, वस्तुएँ सब कुछ तजने का निर्णय लेने के बावजूद बण्टी खण्डित निष्ठा का शिकार है। बंटी एक 'बालक' नहीं 'प्रतीक' बनकर, अलगाव का दंश झेलते बच्चों की मनोदशा का 'प्रतिनिधि' बनकर सामने 'प्रश्नचिन्ह' की भाँति खड़ा है। इस उपन्यास के अतिरिक्त 'पीर पर्वत हो गई' (मालती जोशी), 'पहचान' (शिवप्रसाद सिंह), 'हथेली भर सुख' (यामिनी वर्मा), 'एक दिन का मेहमान' (निर्मल वर्मा), 'एक और जिंदगी' (शिव प्रसाद सिंह) आदि कहानियों के बच्चों की भी यही समस्या है। हिन्दी कथा साहित्य में तलाकयाफ्ता माता-पिता के बच्चों में अपनी अटपटी स्थिति को लेकर बढ़ती क्रोध एवं आक्रामकता की प्रवृत्ति- 'मेरे दोस्त का बेटा' (कृष्णचन्दर) 'नीड़ का निर्माण फिर फिर' (मालती जोशी) 'ऑक्टोपस' (कृष्णा अग्निहोत्री), 'आपका बंटी' (मन्नू भण्डारी) 'गेरूवे की आत्महत्या' (जलज भादुड़ी) आदि में अधिकतर माँ के पास रहने वाले बच्चों में अति पराश्रितता या परनिर्भरता पनपने की प्रवृत्ति- 'अपने पार' (राजेन्द्र यादव), 'एक और जिंदगी' (शिवप्रसाद सिंह) आदि में पिता के पास रहने वाले बच्चों में बढ़ती अनात्मीयता की प्रवृत्ति 'उत्तर' (रमेश बक्षी) में बिस्तर भिगोने तथा गहन अपराध बोध की समस्या - 'आपका बंटी' (मन्नू भण्डारी), 'कड़ियाँ' (भीष्म साहनी), 'पहचान' (शिवप्रसाद सिंह) तथा अनिद्रा, भय और दुश्चिन्ताओं की समस्या को स्पष्टतः रेखांकित किया गया है। किन्तु तलाक के पश्चात् जब माता या पिता अपना नया जीवनसाथी चुन लेते हैं तब इन बच्चों की नव परिवार, नव परिवेश में सामंजस्य स्थापित करने में विफलता तथा इस सन्दर्भ में उठने वाली अन्य अनेक समस्याओं पर जहाँ समाजशास्त्रियों ने अपनी लेखनी चलाई तक नहीं वहीं हिन्दी कथा साहित्य में इस पक्ष पर विशेष रूप से ध्यानाकृष्ट करने का प्रयास किया गया है।

बच्चों को स्वस्थ तथा समुचित बाल-परिवेश न मिल पाने के कारण वे अनेक शारीरिक रोगों तथा मनोरोगों का शिकार हो रहे हैं। जन्मोपरान्त उनके व्यक्तित्व विकास में सामाजिक तत्वों का समावेश सामाजिक अन्तक्रियाओं द्वारा ही होता है और इसके लिए अत्यावश्यक है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था में ये सामाजिक अन्तक्रियाएँ चलती रहें। समाज वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने यद्यपि बच्चों के सामाजिक विकास के सन्दर्भ में परिवार, खेल-साथी समूह, समवयस्क मित्रगण, स्कूल आदि संस्थाओं की चर्चा करते हुए इनके महत्त्व को बतलाया है किन्तु बाल परिवेश के अभाव के फलस्वरूप बच्चों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उन पर हिन्दी कथा साहित्य में बेहतर ढंग से प्रकाश डाला गया है। सर्वप्रथम परिवार को लें तो माता-पिता का भरपूर प्यार-दुलार, साथ और मार्गदर्शन बच्चों के लिए परिवार में एक स्वस्थ बाल-परिवेश उपलब्ध करता है, किन्तु आज के समय में माता-पिता दोनों की घर में अनुपस्थिति, उन्हें क्रेच या घर में ही नौकरों के साथ नितान्त एकाकी छोड़ दिया जाना, उन्हें भय और आतंक से भर देता है। किसी अपने का साथ पाने की व्याकुलता इनमें स्पष्ट देखी जा सकती है जैसे - 'बोझ' (मैत्रेयी पुष्पा), 'माय नेम इश ताता' (सूर्यबाला)। अपनी अहंवादी मानसिकता के कारण कई बार प्रतिष्ठित गृहों में अभिभावक अपने शान-शौकत एवं रूतबे को बनाए रखने के लिए अपने बच्चों को किसी से मिलने-जुलने नहीं देते। रघुवंश ने अपनी कहानी 'मौन संवेदना' में स्पष्टतः दर्शाया है कि किरण नामक बच्चा इसी कारण असामंजस्य की समस्या का शिकार हो जाता है। अब वह मित्रों के साथ खेलने के लिए ठगी, झूठ आदि का सहारा लेता है, स्कूल से भाग जाता है किन्तु सामूहिक कार्यों और खेलों में सामंजस्य न बिठा पाने के कारण जल्दी ही लड़-झगड़कर उठ जाता है। इसके अतिरिक्त 'अफसर का बेटा' (चन्द्रकिरण सौनरेक्सा), 'सुनो पालनहार' (मालती महावर), 'ऑयम सॉरी मम्मी' (आशा जोशी), 'रूबी' (मृणाल पाण्डे) आदि कहानियों में भी एक प्रकार से ये बच्चे अपनी हवेलियों में कैद हैं व समवयस्क साथियों के साथ हँसने-खेलने के लिए तड़प रहे हैं। वर्तमान समय में बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण पढ़ाई, होमवर्क, ट्यूशन, कोचिंग क्लासेज़,

कम्प्यूटर क्लासेज़ की अति व्यस्त दिनचर्या के चलते बच्चों को मित्रों एवं समवयस्कों से मिलने-जुलने, खेलने का वक्त ही नहीं किन्तु इस पक्ष पर हिन्दी कथा साहित्य में प्रकाश नहीं डाला गया है साथ ही मनोरंजन के नित नए तकनीकी साधनों, आविष्कारों, कम्प्यूटर, वीडियोगेम्स आदि की बढ़ोत्तरी के कारण शारीरिक खेलकूद तथा सामूहिक खेलों से उदासीनता के कारण बाल-परिवेश के अभाव की समस्या पर भी अधिक चर्चा नहीं की गई है किन्तु मुशर्रफ आलम जौकी के उपन्यास 'पॉकेमान की दुनिया' में इस विषय पर अत्यन्त गम्भीर और परिपक्व चिंतन मिलता है।

समाजशास्त्रीय अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि बाल-उपेक्षा बाल दुर्व्यवहार का ही एक बहुप्रचलित रूप है किन्तु इसके चिन्ह अल्पदृष्टव्य होने के कारण इस समस्या को गम्भीरता से नहीं लिया जाता। बाल-उपेक्षा बच्चों के शारीरिक मानसिक तथा संवेगात्मक विकास को बहुत प्रभावित करती है अतः इस ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

हिन्दी कथा साहित्य में बाल-उपेक्षा का वर्गीकरण अलग ढंग से किया गया है जैसे - (1) बालिका उपेक्षा (2) अक्षम बच्चों की उपेक्षा (3) अनाथ एवं निराश्रित बच्चों की उपेक्षा (4) परिवार में जन्मक्रम में दूसरे, तीसरे या अगले पायदान पर आने वाले बच्चों के बाद पहले बच्चे की उपेक्षा (5) परिवार में पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण उपेक्षा (6) भावनात्मक उपेक्षा। माता-पिता द्वारा जबरन अपनी इच्छाएँ बच्चों पर लादना व उनकी आवश्यकताओं, इच्छाओं का तिरस्कार।

हिन्दी कथा साहित्य में समाजशास्त्रियों द्वारा इस समस्या के सन्दर्भ में छूटे हुए एक पक्ष - निराश्रित व अनाथ की उपेक्षित स्थिति तथा दुर्दशा को भी रेखांकित किया गया है जैसे - 'मैं यतीम नहीं हूँ' (मीनाक्षी सिन्हा), 'पिल्ली' (गिरीराज किशोर), 'मेहमान' (उषा देवी विजय कोल्हटकर), 'ममता' (चुन्नीलाल सलूजा), 'कुत्ते की पूँछ' (यशपाल) 'लड़की रहस्य न थी' (गिरीराज किशोर) आदि कहानियों में। चाहे अनाथाश्रम हो या इन्हें शरण देने वाले गृहस्वामी, इनका उचित पालन पोषण तथा संरक्षण करने के बजाय इन्हें मात्र शोषण का माध्यम भर मानते हैं और किसी भी प्रकार का अत्याचार करने से नहीं हिचकते। अपने परिवार में उपेक्षित रहने वाले बच्चों की फेहरिस्त भी बड़ी लम्बी है तथा इनकी उपेक्षा के अनेक कारण हैं जो समाजशास्त्रियों द्वारा बतलाए गए कारणों से पर्याप्त भिन्न हैं। समाज शास्त्रियों ने ने बाल-उपेक्षा के कारक - अभिभावकों का अतीत-अनुभव, पारिवारिक संरचना की अपूर्णता, कम आय, परिवार का बड़ा आकार, पारिवारिक सदस्यों में आपसी सम्पर्क का अभाव, माता-पिता का अवसादग्रस्त या दुर्व्यसनी होना तथा स्वयं बच्चों से सम्बन्धित कारक - कुरूपता, अक्षमता, अनुशासनहीनता, विद्रोही स्वभाव आदि बताए हैं। किन्तु हिन्दी कथा साहित्य में दर्शाया गया है कि विवाहपूर्व की अवैध सन्तान होने के कारण पहले तो एक बच्ची को अनाथाश्रम में डाल दिया जाता है, बाद में बेटी का सुख लेने के लिए माता-पिता उसे अनाथाश्रम से तो ले आते हैं किन्तु उस पर विश्वास नहीं करते बल्कि उपेक्षा व तिरस्कार ही करते हैं - ('तितली' - बेला मुखर्जी)। सपत्नी की सन्तान होना - ('प्रतिद्वन्द्वी' - बेला मुखर्जी), पिता को सज़ा हो जाने के कारण रिश्तेदारों के घर रहने को विवश होना - ('सजा' - मन्नू भण्डारी, 'धरती अब भी घूम रही है' - विष्णु प्रभाकर) माता या पिता की मृत्यु हो जाने के कारण रिश्तेदारों के घर रहने की विवशता होना - ('जिद्दी' - शेखर जोशी, 'हत्या एक दोपहर की' - मेहरून्निसा परवेज़, 'पीर पर्वत हो गई है' - मालती जोशी), माता-पिता द्वारा बच्चों पर ध्यान न देना या अपर्याप्त देखरेख ('दौड़'-गोविन्द मिश्र, 'रहमतुल्ला'-शैलेष मटियानी, उपेक्षित - 'उसका बचपन' (उप0) - कृष्ण बल्देव वैद, 'लाल टीन की छत' (उप0) - निर्मल वर्मा), बच्चों का कुरूप व अयोग्य होना तथा माता-पिता की आकांक्षाओं की कसौटी पर खरा न उतरना ('छिन्नमस्ता' - प्रभा खेतान, 'आपकी छोटी बेटी' - ममता कालिया) अभिभावकों द्वारा अपनी महत्त्वाकाक्षाएँ बच्चों पर एक प्रकार से लाद देना तथा उनकी अवस्था, सहज बाल सुलभ वृत्तियाँ, उनकी इच्छा-अनिच्छा को ही भूल जाना ('प्राब्लम चाइल्ड' - मालती जोशी, 'निर्माण - अमरकान्त, 'बाप का हृदय' - 'सुदर्शन', 'शेखर एक जीवनी' - अज्ञेय, 'दुख भरी दुनिया' - कमलेश्वर, 'मैं तो शकुन हूँ' - मालती जोशी, 'अनहैप्पी बर्थ डे' - मालती जोशी, -एहसास-दर-एहसास - पृथ्वीराज मोंगा, 'पढ़ाई' - जैनेन्द्र) तथा बच्चों का विद्रोही तथा अवज्ञाकारी होना ('शेखर एक जीवनी' - अज्ञेय 'कसक' - सुधा गौतम) आदि बाल-उपेक्षा के अन्य महत्त्वपूर्ण कारक हैं।

बाल उपेक्षा के प्रभावों के सम्बन्ध में भी जहाँ समाजशास्त्रियों ने उपेक्षित बच्चों में तनाव, बेचैनी, खीझ, झुँझलाहट, एकाग्रता में कमी, अवरूद्ध विकास मूल प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण का अभाव, अधिगम-क्षमता में कमी, शैक्षिक प्रदर्शन में गिरावट, आयु वृद्धि के साथ-साथ क्रोध, उलझन एवं विद्रोहात्मकता बढ़ते जाने की समस्या बताई है वहीं साहित्यकारों ने मुख्यतः ऐसे उपेक्षित बच्चों में अवसाद, निराशा, आत्म दैन्य की भावना, अन्तर्मुखता, संकोची तथा दब्बू स्वभाव, पलायनवृत्ति, मूकता, भटकन, अकुलाहट आदि को दर्शाया है तथा अपनी अस्मिता पर आए इस संकट के कारण उनमें आपराधिक मनोवृत्ति उत्पन्न होने की समस्या, पीड़ादायी नकारात्मक व विध्वंसात्मक कृत्यों में संलिप्त होने की समस्या को भी दिखाया है - ('शेखर एक

जीवनी' - अज्ञेय, 'कृष्णकली' - शिवानी, 'आपका बंटी' - मन्नू भण्डारी) आदि।

अपराधी जन्मजात नहीं होते बल्कि परिवेश तथा परिस्थितिगत कई कारण ऐसे होते हैं जो सामान्य मनोवृत्ति को आपराधिक मनोवृत्ति में परिवर्तित कर देते हैं। यद्यपि समाजशास्त्रियों ने बच्चों की आपराधिक मनोवृत्ति पर पर्याप्त चिन्तन मनन किया है तथा वे जैविक, व्यक्तित्व संबंधी तथा मनोवैज्ञानिक कारकों की भी चर्चा करते हैं जैसे - शारीरिक या मानसिक दोष, विकृति (जन्मजात), हीनता, व्यक्तित्व का अधिक या न्यून विकास, अभिभावकों की आपराधिक मनोवृत्ति का बच्चों में स्थानान्तरण (विलियम हीली, हूटन, शेल्डन, एडलर आदि विद्वानों ने इस मत की पुष्टि की है), व्यक्तित्व की स्थापना हेतु, दबी कुचली वासनाओं तथा मनोविकृति के प्रदर्शन हेतु 'इड' पर कम नियन्त्रण रख पाना, तंत्रिका रोग, मानस-मंदता, भावावेश व नियन्त्रण की कमी आदि। घर में अत्यधिक लाड़ प्यार मिलना अथवा इसके विपरीत उपेक्षा, तिरस्कार, प्रताड़नाएँ मिलना, उन पर ध्यान न दिया जाना, एकाकीपन, घर का दूषित वातावरण, भग्न परिवार, अति न्यून या अत्यधिक कठोर अनुशासन, बचपन में किसी प्रकार के शोषण का शिकार होना भी बच्चों में आपराधिक मनोवृत्ति के लिए उत्तरदायी है। साहित्यकारों ने इनमें से कुछेक तत्त्वों को ज्यों का त्यों अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है जैसे 'निजता' की स्थापना के लिए बच्चों का अनुचित तथा असामाजिक कृत्य करना जैसे- 'शेखर एक जीवनी' (अज्ञेय), 'कृष्णकली' (शिवानी), 'मेरे दोस्त का बेटा' (कृष्णचन्दर) 'नतीजा' (चित्रा मुद्गल)। इनका जागरूक अहं अपने 'स्वत्व' को यूँ कुचल दिया जाना बर्दाश्त नहीं कर पाता फलतः वे कुछ ऐसे कृत्य करने लगते हैं कि उनके माध्यम से वे स्वयं को स्थापित कर सकें। वहीं बचपन में शोषण का शिकार होने पर भी बच्चों में कुछ असामाजिक प्रवृत्तियाँ जन्म ले सकती हैं जैसे 'सूरजमुखी अंधेरे के' (कृष्णा सोबती)। अति न्यून अनुशासन व अत्यधिक लाड़-प्यार बच्चों को बिगड़ैल बना देता है, जैसे- 'मेरे बाबा' (पुष्पलता कश्यप), 'हिस्सेदारी', 'फरिश्ते', 'ओस के मोती' (कृष्णा अग्निहोत्री) आदि। अति कठोर अनुशासन उन्हें विद्रोही तथा आक्रामक बनाता है जैसे 'वंशज' (मृदुला गर्ग), 'दायित्व' (अवधेश श्रीवास्तव), 'आतंक' (सुनील कौशिक), 'मौन संवेदना' (रघुवंश)। उपेक्षित बच्चे भी ऐसे आपराधिक कृत्य करने लगते हैं जैसे - 'नींव का पत्थर', 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी), 'उस घर में' (पृथ्वीराज मोंगा) तथा घर का कलह-क्लेषपूर्ण तथा दूषित वातावरण उन्हें घर से पलायन करने, बुरी संगति में पड़ने तथा अवैधानिक कृत्य सीखने में उत्प्रेरक का कार्य करता है जैसे - 'त्रिशंकु', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी' (चित्रा मृदगल)।

हिन्दी साहित्यकारों ने कुछ ऐसे नवीन तत्वों के बारे में भी चर्चा की है जो समाजशास्त्रियों की दृष्टि से छूट गए हैं किन्तु बच्चों की आपराधिक मनोवृत्ति की वृद्धि के सम्बन्ध में अत्यधिक महत्त्व रखते हैं - जैसे बड़ों द्वारा गलत आदर्श रखना। बच्चे अनुकरण द्वारा ही सीखते हैं इसलिए बड़ों के अनुचित कृत्यों का उन पर सीधा तथा भयानक दुष्प्रभाव पड़ता है जैसे 'वी0सी0आर0 बीमार है', 'अभिभावक', 'पाजेब', 'बेईमान' आदि कहानियों में। वहीं शिक्षा व्यवस्था की खामियाँ भी उन्हें सद्मार्ग दिखाने के बजाय गैर सामाजिक कृत्यों की ओर धकेल रही हैं। जैसे - मिसफिट (रामदरश मिश्र), ललक (प्रदीप पंत) आदि। वहीं मनोरंजन के साधनों के दुष्प्रभाव से बच्चों में आपराधिक मनोवृत्ति का पनपना 'बीसवीं सदी की एक खरोंच' (कत्तार सिंह दुग्गल), 'अढ़ाई गज की ओढ़नी' (चित्रा मुद्गल), 'पॉकेमान की दुनिया' (मुशर्रफ आलम जौकी) आदि में दर्शाया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'संघर्ष यात्रा का पहला पड़ाव': कृष्ण किशोर, पृ0 58-59

2. समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा: अरूण कुमार सिंह, पृ0 736

3. जंक्शन: मुक्तिबोध, पृ0 201-202

4. समाजिक विघटन: गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृ0 240

5. समाजशास्त्र - एक विधिवत विवेचन: हेरी एम0 जॉनसन, अनुवादक - योगेश अटल, पृ0 171-172

6. वक्तव्य (आपका बण्टी): मन्नू भण्डारी, पृ0 5

Corresponding Author

Dr. Asha Tiwari Ojha*

Associate Professor, Department of Hindi, Sunderwati Mahila College, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar